वर्णन लेखक ने इन शब्दों में किया है- ''डरी हुई खामोशी इस कद्र पसरी थी कि शहर के आवारा कुत्ते तक जाने कहां दुबक गए थे। मानो शहर की ही मौत हो गई थी। नन्हें मासूम बच्चों की किलकारी और रुदन पर भी मांओं की हथेलियों का पहरा था।''

इस माहौल में दो लोग अपने-अपने कारणों से बहुत मजबूरी में डरते-डरते सड़क पर निकले हैं। एक अपने बूढ़े बाप को घर वापिस लाने बाहर आया है और दूसरा घायल अवस्था में जैसे भी हो अपनी बेटी के पास पहुंच जाना चाहता है। नौजवान बूढ़े को अपने कंधे पर लेकर चल रहा है और पुलिस की गोलियों से दोनों मारे जाते हैं। यह पता नहीं चल पाता कि दोनों में किसका क्या धर्म है, लेकिन दोनों के बीच संवाद से अनुमान लगता है कि नौजवान हिन्दू है और बूढ़ा मुसलमान। दोनों जब मरते हैं तो गाढ़ा अंधेरा गवाही देता है। उसने देखा- ''तड़पते हुए दो जिस्म, दो इंसान और दो कौमों का लहू एक होने लगा था।''

''हांफता हुआ शोर'' और ''असमाप्त'' दोनों बेहद मार्मिक कहानियां हैं। इनमें विपन्नता और गरीबी का जो बयान हुआ है वह हिलाकर रख देता है। असमाप्त में नगर के मुहाने पर मुख्य सड़क के पास बसी बस्ती का चित्रात्मक वर्णन है जिसे त्रिआयामी कहा जा सकता है। जैसे पाठक वह सब कुछ अपनी आंखों के सामने घटित होते देख रहा है। मुख्यतः गरीबों की बस्ती है, लेकिन आसपास कुछ निम्न मध्यमवर्गीय, कुछ मध्यमवर्गीय, कुछ नौकरीपेशा, कुछ छोटे-मोटे दुकानदार, ऐसे तमाम चरित्र हैं। उनमें किसी हद तक आपसी मेलजोल है। जिसे आवश्यकता हो, उसकी मदद करने की उदारता भी है। इसमें एक तरफ वे चरित्र हैं जैसे सेठानी और पाठक जी, जो जीवन के प्रति आस्था जगाए रखते हैं। टपरा चाय दुकान का मालिक रामा का दद्दा है जो गरीबी के बावजूद चोरी को पाप समझता है। दूसरी तरफ दुर्दांत गरीबी है जो रामा की अम्मा के प्राण हर ले लेती है। असहायता का बोध पसर जाता है। एक टुकड़ा जिंदगी कई टुकड़ों में बंट जाती है, लेकिन कथा तो असमाप्त है। हमारे समाज की असमाप्त कथा। हमारे समय की भीषण सच्चाई कि गरीबी से निजात पाना आसान तो नहीं।

गरीबी की यही कथा ''हांफता हुआ शोर'' में भी है। एक प्रेमकथा से जिसका प्रारंभ हुआ, वह एक दुखांतिका में बदल जाती है। गांव से शहर आकर रिक्शा चलाकर, अपनी हड्डियां तोड़ते हुए गुजारा करते जोहन को टीबी हो जाती है। गांव से प्रेमिका के साथ शहर भागकर आया था। वह प्रेम धीरे-धीरे परिस्थितियों के कारण क्षीण होते जाता है। घर में खाने के लाले पड़े। एक दिन बर्तन बेचकर जोहन खाने-पीने का सामान लाता है। कई दिन के भूखे चार बरस के बेटे को वह प्रेमवश इतना खिलाता है कि उसी में उसकी मौत हो जाती है। इस बीच पत्नी सोनिया कभी चीटियों की तरह दुनिया की भीड़ में कहीं खो जाना चाहती है, तो कभी वह अपने को मक्खी के रूप में देखती है जिसे मकड़ी ने दबोचकर खत्म कर दिया है।

''मरे हुए लोग'' का प्रारंभ कुछ इस तरह से होता है मानो लेखक कहानी नहीं कोई गद्य-गीत लिख रहा हो। वह कथावस्तु पर आने के पहले मैकल पर्वत श्रृंखला के बीच में बसे गांवों में ग्रीष्म ऋतु का कुछ इसी अंदाज में वर्णन करता है। लेकिन कुछ देर में कहानी खुलती है तो एक बार फिर समाज की कठोर सच्चाइयों से हमारा परिचय होता है। जंगल पर सरकार का अधिकार है, जंगलात का महकमा आदिवासियों से कीड़े मकोड़े सा व्यवहार करना है। गांव में एक स्वघोषित नेता है जो गांव वालों के साथ संघर्ष करने के वायदे तो बड़े-बड़े करता है, लेकिन मौका आने पर भाग खड़ा होता है और उसके भरोसे बैठे लोग ठगे रह जाते हैं। इस कहानी के प्रारंभ और अंत के निम्नलिखित अंश क्रमशः दृष्टव्य हैं- ''हां, शाम को जब सूरज पहाड़ी की ओट में थके हुए राहगीर की मानिंद निढाल हो जाएगा तब जंगली परिंदे मेहमानों की तरह पहाड़ियों से गांव में उतर आएंगे।''

''हवा खामोश थी। सरई के पेड़ गमगीन खड़े थे। चारों तरफ सन्नाटा पसर गया था। महसूस हो रहा था- गांव में कुछ जिंदगियां थीं, जो मर गई थीं। इन्हीं मरी हुई जिंदगियों को नोचने आसमान में गिद्धों का कुनबा चक्कर मार रहा था।''

नेसार नाज़ एक तरफ ऐसे तमाम सामाजिक प्रश्न उठाते हैं, तो दूसरी ओर वे उसी सरलता से प्रेमकथाएं भी लिखते हैं। ''लाल गुलाब'', ''गिद्धों का घोंसला'', ''बुनियाद की ईंट'' कुछ ऐसी ही कहानी हैं। ''मरघट की खटिया'' का रंग अलग है। यहां हम हरखू से मुखातिब होते हैं जो श्मशानघाट से चादर, खाट, बांस उठाकर-बेचकर अपनी आजीविका चलाता है और फिर एक दिन खुद हमेशा के लिए सो जाता है। ''मीरबाज खान'' शीर्षक कहानी बिलकुल आज की कहानी है जब देश की सरकार और उसकी पार्टी के एजेंडे में गौरक्षा उच्च स्थान पर है और जब मुसलमान के लिए गाय पालना भी एक तरह से अपराध मान लिया गया है।

नेसार नाज़ की कहानियां पढ़ते हुए मुझे अनायास अपने मित्र सुबोध श्रीवास्तव की कहानियां याद आईं। सहानुभूति से प्रेरित होकर लिखना एक बात है, लेकिन वंचित समाज के भीतर बैठकर उनकी जीवन स्थिति का चित्रण करना, उनके प्रति कहानियों के माध्यम से एकजुटता प्रदर्शित करना साहस का काम है। मलिन बस्ती, झुग्गी झोपड़ी, नालों के किनारे और गांव की कच्ची-पक्की झोपड़ियों के बीच रहने वालों के जीवन को समझना और उसका अक्स उतारना सरल काम तो है नहीं। नेसार नाज़ इसके लिए बधाई के पात्र हैं। बधाई तो बैकुंठपुर के ही मूल निवासी युवा लेखक संजय अलंग को भी मिलना चाहिए, जिन्होंने निसार नाज़ की कहानियां एकत्र कर संकलन प्रकाशित करने में व्यक्तिगत दिलचस्पी ली। मेरी समझ में यह उन्होंने बड़ा काम किया है। वरना छत्तीसगढ़ के एक सशक्त कथाकार से हम अब तक अनजान ही रहे आते। लेखक बिरादरी में ऐसी उदारता, ऐसा मैत्रीभाव कम ही देखने मिलता है और उदासीनता के चलते कितने ही गुणी रचनाकार सामने नहीं आ पाते। ■